अध्याय 24

याजकों के लिए निर्देश और दण्ड के योग्य एक प्रकरण

अध्याय 24 को पुस्तक के "विविध" फुटकर बातों का संकलन देखा जा सकता है। पहले यह पवित्र निवास-स्थान में पाए जाने वाली सामग्री के बारे में कहता है: दीवट और मेज़ पर की बारह रोटियां। फ़िर वह ईश-निन्दा के एक प्रकरण और उसका निवारण किस प्रकार किया गया इसका विवरण देता है। उस पाप को दण्ड देने के निर्देशों के सम्बन्ध में लेख निर्धारित करता है कि मनुष्यों और पशुओं के चोटिल होने की स्थिति में क्या करना है। अध्याय का यह भाग पेंटाट्युक में तीन बार दिए गए स्मरणीय शब्द "आँख के बदले आँख" में से एक है।

क्योंकि ये शब्द परमेश्वर से आए हैं, इसलिए यह समझना अनिवार्य नहीं है कि वे उससे पहले या बाद में आने वाले खण्ड के साथ किस प्रकार से संबंधित हैं। फ़िर भी, शेष पुस्तक के साथ किसी खण्ड का संबंध देखना पाठक की सहायता करता है कि वह उसके सत्यों को और भली-भांति समझ सके तथा उनकी सराहना कर सके। इसलिए यह प्रश्न करना उचित है कि इस अध्याय के नियम शेष पुस्तक के साथ कैसे संबंधित हैं, यदि हैं भी तो।

इस प्रश्न का एक संभव उत्तर है कि यह पुस्तक, जैसा कि बहुधा सुझाव भी दिया गया है, "याजकों के लिए लघु पुस्तिका" थी। यदि याजक इस नियमावली की पुस्तक का प्रयोग अपने कार्य के विषय निर्देशों को प्राप्त करने के लिए करते, तो वे इसके पहले भाग में, जो अध्याय 1 से 23 तक है, लगभग प्रत्येक प्रकार के बलिदान के बारे में नियम, लगभग प्रत्येक प्रकार का पर्व, और मिलापवाले तम्बू के लगभग प्रत्येक भाग को पाते। (अध्याय 25 में दो पवित्र समयों के विषय अतिरिक्त जानकारी दी गई है, विश्राम वर्ष और जुबली का वर्ष।) किन्तु लैव्यव्यवस्था में अब तक, पवित्र स्थान की दो सामग्रियों - दीवट और मेज़ के बारे में कुछ नहीं कहा गया है। लैव्यव्यवस्था 24:1-9 इस रिक्त स्थान की पूर्ति करता है। इस खण्ड ने संभव कर दिया कि याजक अपनी "नियमावली" को देखकर इन दोनों सामग्रियों के बारे में वह सीख ले जो उसे जानने की अभी भी आवश्यकता था।[1]

तो फ़िर इस अध्याय में ईश-निन्दा और उससे संबंधित नियम क्यों दिए गए हैं? इसका सबसे उत्तम उत्तर है कि एतिहासिक दृष्टि से वह घटना लगभग तभी घटित हुई होगी जब उस अध्याय में दिए गए प्रकाशन प्रदान किए जा रहे थे।[2] उस

प्रकरण का निवारण तुरंत किया जाना था, और किया भी गया। एक बार जब लोगों ने परमेश्वर से सीख लिया कि उन्हें ईश-निन्दक को मृत्यु दण्ड देना है, तो यहोवा ने इस बात की आवश्यकता को देखा कि वे यह समझ सकें कि मृत्यु दण्ड के योग्य अपराध क्या है, तथा मृत्यु दण्ड के अयोग्य अपरोधों का निवारण किस प्रकार करना है। इसके अतिरिक्त, संभवतः, यह प्रकरण लैव्यव्यवस्था की पुस्तक में अभी तक पाए जाने वाले नियमों के उपयुक्त उपसंहार का कार्य करता था। इससे इस बात को बल मिलता है कि परमेश्वर की पवित्रता का आदर किया जाना है। उसके पवित्र नाम की निन्दा करके उसके विरुद्ध बोलने की अनुमति नहीं है; इसका परिणाम परमेश्वर की पवित्रता का तिरिस्कार करने वाले की मृत्यु है।

मिलापवाले तम्बू के लिए याजकों के दायित्व (24:1-9)

मिलापवाले तम्बू का दीपक (24:1-4)

[1]फ़िर यहोवा ने मूसा से कहा, [2]"इस्राएलियों को यह आज्ञा दे कि मेरे पास उजियाला देने के लिये कूट के निकाला हुआ जैतून का निर्मल तेल ले आना कि दीपक नित्य जलता रहे। [3]हारून उसको, मिलापवाले तम्बू में, साक्षीपत्र के बीचवाले परदे से बाहर, यहोवा के सामने नित्य साँझ से भोर तक सजाकर रखे; यह तुम्हारी पीढ़ी पीढ़ी के लिये सदा की विधि ठहरे। [4]वह दीपकों के स्वच्छ दीवट पर यहोवा के सामने नित्य सजाया करे।"

मिलापवाले तम्बू के पवित्र-स्थान में सुनहरा दीवट था (निर्गमन 25:31-40)। परमेश्वर ने उस दीवट के दीपकों को सदा जलते रहने का दायित्व याजकों और लोगों, दोनों के दिया था। जिस दीपक या उजियाले के विषय में विचार किया जा रहा है उसे दो बार एक-वचन में ("उजियाला," "दीपक"; 24:2) कहा गया है और एक बार बहु-वचन में ("दीपकों"; 24:4)। यह पहले दिए गए विवरण के अनुरूप है जिसमें दीवट को सात दीपकों वाला कहा गया है। इसलिए इसे एक वस्तु (एक दीवट) या फ़िर सात वस्तुएँ (सात दीपक) दोनों ही कहा जा सकता है।

आयतें 1-4. यहोवा ने मूसा से जो सन्देश कहा (24:1) उसमें आज्ञा थी कि यह लोगों का दायित्व था कि वे मिलापवाले तम्बू के लिए **तेल ले आएं कि दीपक नित्य जलता रहे** (देखिए निर्गमन 27:20)। शब्द "उजियाला" (מָאוֹר, *मा'ओर)* का अनुवाद "प्रकाशपुंज," और शब्द "जलता" (עָלָה, *'अलाह)* का शब्दार्थ "ऊपर उठना" किया जा सकता है। नियम यह भी संकेत करता है कि कोई भी तेल दीपक के लिए कार्य नहीं करेगा; लोगों को **कूट के निकाला हुआ जैतून का निर्मल तेल** (24:2) ही लाना था। और, उन्हें दीपक को **नित्य** जलते रहने, प्रति रात्रि, **साँझ से भोर तक** के लिए पर्याप्त लाना था।

दीपक को जलाना और उसे जलाए रखना याजकों का दायित्व था। यहोवा ने स्पष्ट किया कि वह किस दीपक के विषय में बात कर रहा था: वह जो (पवित्र-

स्थान में) **मिलापवाले तम्बू** (निवास-स्थान) **में, साक्षीपत्र के बीचवाले परदे से बाहर** था (24:3)।

यह सुनिश्चित करना कि दीपक ठीक से जल रहा है का विवरण **वह दीपकों के स्वच्छ दीवट पर यहोवा के सामने नित्य सजाया करे** कहकर किया गया है (24:4)। यह कर्तव्य **हारून**, महायाजक, को सौंपा गया था (24:3)। यद्यपि यह संभव है कि महायाजक स्वयं यह सुनिश्चित करता था कि यह दीपक प्रति संध्या जलाया गया है, यह अधिक संभव प्रतीत होता है कि यहाँ "हारून" का प्रयोग याजकों के लिए किया गया है। निर्गमन 27:21 के अनुसार, दीपक को जलते हुए रखने के लिए याजक उत्तरदायी थे। यह हो सकता है कि महायाजकों का यह दायित्व था कि वे देखें कि यह हो रहा है कि नहीं, किन्तु व्यक्तिगत रीति से देखें यह आवश्यक नहीं था।

परमेश्वर ने बल दिया कि दीपक से संबंधित नियम उस समय से लेकर इस्राएल के अस्तित्व भर तक निभाए जाएँ। इसे **पीढ़ी पीढ़ी के लिये सदा की विधि ठहरे** कहा गया (24:3)।

पवित्र-स्थान में मेज़ पर रोटियाँ (24:5-9)

5"तू मैदा लेकर बारह रोटियाँ पकवाना, प्रत्येक रोटी में एपा का दो दसवाँ अंश मैदा हो। 6तब उनकी दो पंक्तियाँ करके, एक एक पंक्ति में छः छः रोटियाँ, स्वच्छ मेज पर यहोवा के सामने धरना। 7और एक एक पंक्ति पर चोखा लोबान रखना कि वह रोटी पर स्मरण दिलानेवाली वस्तु और यहोवा के लिये हव्य हो। 8प्रति विश्रामदिन को वह उसे नित्य यहोवा के सम्मुख क्रम से रखा करे, यह सदा की वाचा की रीति इस्राएलियों की ओर से हुआ करे। 9और वह हारून और उसके पुत्रों की होंगी, और वे उसको किसी पवित्रस्थान में खाएँ, क्योंकि वह यहोवा के हव्यों में से सदा की विधि के अनुसार हारून के लिये परमपवित्र वस्तु ठहरी है।"

फ़िर यहोवा ने याजकों के दायित्वों और "भेंट वाले रोटियों" के संबंध में, जो पवित्रस्थान में मेज़ पर रखी जाती थीं, उनके विशेषाधिकारों का विवरण दिया।[3]

आयतें 5-9. पवित्रस्थान में मेज़ पर रखी गई रोटियों के विषय परमेश्वर के निर्देश स्पष्ट थे। (1) **मैदा लेकर बारह रोटियाँ पकवाना**, और प्रत्येक रोटी को **एपा का दो दसवाँ अंश मैदा** से बनवाना (24:5)। (2) उन्हें **दो पंक्तियाँ** (या दो ढेर[4]) में, **एक एक पंक्ति में छः छः रोटियाँ** करके रखना था; प्रत्येक को स्वच्छ मेज पर (24:6)। (3) रोटियों पर **चोखा लोबान रखना**। इसे **स्मरण दिलानेवाली वस्तु और यहोवा के लिये हव्य** होना था (24:7)। जब रोटियों को मेज़ पर से हटाया जाता, तब लोबान को होमबलि की वेदी पर डाला जाता और परमेश्वर के लिए चढ़ावा करके जलाया जाता (देखिए 2:2)। (4) प्रत्येक विश्रामदिन को, पुरानी रोटियों के स्थान पर नई रोटियों को रखा जाना था। (5) रोटियों से संबंधित नियमों को **सदा** मनाना था, परमेश्वर और उसके लोगों के मध्य **सदा की वाचा की रीति** के भाग के

समान (24:8)। (6) जो रोटियाँ मेज़ पर से प्रति विश्रामदिन हटाई जाती थीं, उन्हें **हारून और उसके पुत्रों** को दिया जाना था, याजकों का कार्य करने के उनके पारिश्रमिक के भाग के रूप में। उन्हें परमपवित्र माना जाना था; और केवल याजक (उनके परिवार नहीं) उन्हें **खा** सकते थे और यह उन्हें **पवित्रस्थान** में करना था (24:9)।

ईश-निन्दा से बचाव (24:10-23)

ईश-निन्दा क पाप किया गया (24:10-12)

10उन दिनों में किसी इस्राएली स्त्री का बेटा, जिसका पिता मिस्री पुरुष था, इस्राएलियों के बीच चला गया; और वह इस्राएली स्त्री का बेटा और एक इस्राएली पुरुष छावनी के बीच आपस में मारपीट करने लगे, 11और वह इस्राएली स्त्री का बेटा यहोवा के नाम की निन्दा करके शाप देने लगा। यह सुनकर लोग उसको मूसा के पास ले गए। उसकी माता का नाम शलोमीत था, जो दान के गोत्र के दिब्री की बेटी थी। 12उन्होंने उसको हवालात में बन्द किया, जिससे यहोवा की आज्ञा से इस बात पर विचार किया जाए।

इस्राएल के निवास-स्थान से संबंधित अनुष्ठानों की जानकारी के पश्चात इस पुस्तक का दो में से दूसरा वृतान्त वाला भाग मिलता है। (इस से अतिरिक्त, अध्याय 10 में नादाब और अबीहू का वृतान्त है।)

आयतें 10-12. कथा को शीघ्रता और दक्षतापूर्वक कहा गया है। पाठक मान सकता है कि केवल महत्वपूर्ण भाग ही दिए गए हैं। दो पुरुष **छावनी के बीच आपस में मारपीट करने लगे** (24:10)। उनकी परस्पर असहमति का कारण नहीं दिया गया है।[5] उनके झगड़े का स्वरूप भी नहीं दिया गया है, यद्यापि लेख से लगता है कि हाथा-पाई हुई थी। उनके झगड़े, या मारपीट में, एक पुरुष **यहोवा के नाम की निन्दा करके शाप देने लगा** (24:11)। "नाम" केवल यहोवा का नाम, "याहवेह" (יהוה, *याहवेह)* हो सकता है।

पारिभाषिक शब्द "निन्दा" का क्या अर्थ है? अंग्रेज़ी शब्द "निन्दा" का अभिप्राय होता है परमेश्वर के प्रति तिरिस्कार या अनादर दिखाना। टिमथी एम. विल्लिस के अनुसार, इस खण्ड में जिस इब्रानी शब्द का अनुवाद "निन्दा" (נָקַב, *नाकाब)* हुआ है उसका सदा ही यह नकारात्मक अर्थ नहीं होता है। अपने आप में उसका अर्थ होता है, "'उल्लेख' या 'बोलना' (गिनती 1:17; 1 इतिहास 16:41)"; और "यहाँ 'शाप' शब्द के साथ जुड़े होने से यह अनादरपूर्ण अर्थ व्यक्त करता है।"[6] शब्द "शाप" इब्रानी शब्द קָלַל *(कलाल)* का अनुवाद है, जिसका अर्थ होता है "अनादर" या "अपमानजनक व्यवहार।"[7] दोषी व्यक्ति ने संभवतः परमेश्वर के विरुद्ध कोई शाप बोला होगा (देखिए अय्यूब 2:9)।

जिन लोगों ने निन्दा और शाप को सुना वे तुरंत जान गए कि निंदक ने गलत

किया है। दस में से तीसरी आज्ञा है “तू अपने परमेश्वर का नाम व्यर्थ न लेना” (निर्गमन 20:7), और व्यवस्था कहती है, “परमेश्वर को श्राप न देना” (निर्गमन 22:28)। उन्होंने यह समझ लिया कि ऐसे पाप को दण्ड मिलना चाहिए, क्योंकि वे तीसरी आज्ञा का अन्त जानते थे: “क्योंकि जो यहोवा का नाम व्यर्थ ले वह उसको निर्दोष न ठहराएगा” (निर्गमन 20:7)। परन्तु व्यवस्था में परमेश्वर के नाम को व्यर्थ लेने का दण्ड निर्धारित नहीं किया गया था। इसलिए उन्होंने निन्दा करने वाले को लिया और **उसको हवालात में बन्द किया** जब तक कि परमेश्वर से पता नहीं चल जाता कि उसे क्या दण्ड मिलना चाहिए था (24:12)।

प्रत्यक्षतः यह एक विधि थी जिससे परमेश्वर ने अपने लोगों पर अपनी व्यवस्था को प्रकट किया: किसी ऐसी परिस्थति के घटित होने की प्रतीक्षा करना जिसके लिए व्यवस्था कुछ नहीं कहती थी। जब ऐसी परिस्थति उठी, तब मूसा के सामने प्रश्न लाया गया कि क्या करना है, और मूसा उसे परमेश्वर के सामने लाया। परमेश्वर ने तब उसका उत्तर दिया, और उसका उत्तर तब से आगे के लिए उसकी व्यवस्था का भाग बन गया।[8] यह प्रकरण बाद के लिए ऐसे ही अन्य प्रकरणों के विषय निर्णय लेने के लिए उदाहरण बन गया। (एक और परिस्थिति के लिए जिसमें नियम का उल्लंघन करने वाले को हवालात में डाला गया जब तक कि यहोवा की की इच्छा जानी जा सकती, देखिए गिनती 15:32-36। यह परिच्छेद एक ऐसे मनुष्य के विषय में है जिसने विश्रामदिन, जो विश्राम करने का दिन था, में लकडियाँ एकत्रित कीं।)[9]

क्योंकि इतने कम शब्द इस कथा को बताते हैं, इसलिए यह चकित करता है कि निन्दा करने वाले के विषय में नगण्य प्रतीत होने वाले इतने तथ्य दिए गए हैं। (1) उसकी पहचान **इस्राएली स्त्री का बेटा, जिसका पिता मिस्री पुरुष था** (24:10) बताई गई है, परन्तु उसका नाम नहीं दिया गया। (2) **उसकी माता का नाम शलोमीत था**, और वह (3) **दान के गोत्र के दिब्री की बेटी थी** (24:11)।

यह विवरण क्यों दर्ज किया गया? इस परिच्छेद का उद्देश्य, यह समझाने के लिए कि यदि एक विश्वासी इस्राएली स्त्री किसी “मिस्री,” गैर-इस्राएली से विवाह करती, तो जो हो सकता था, उसके विषय में चेतावनी के रूप में प्रयोग किए जाने का हो सकता है। हो सकता है कि सन्देश यह हो कि ऐसे मेल की सन्तान ईश्वरीय नाम के प्रति अनादर की भावना के साथ व्यसक हो। हो सकता है कि सन्देश यह हो कि चाहे गैर-इस्राएलियों का परमेश्वर के लोगों के मध्य में रहने के लिए तो स्वागत था, किन्तु इस्राएलियों को उनके साथ विवाह नहीं करना था[10] यदि वे यहोवा को अपना परमेश्वर स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं थे।[11]

निन्दा करने वाले का नाम दर्ज नहीं किया जाना, जबकि उसकी माता का किया गया है, महत्वपूर्ण हो सकता है। गिनती 15 के इसके समानान्तर प्रकरण में, जब विश्रामदिन का उल्लंघन करने वाले को पथराव करके मारा गया, दोषी व्यक्ति के नाम को नहीं लिखा गया। संभवतः परमेश्वर नहीं चाहता था कि उनके नाम भावी पीढ़ियों के लिए लिखवाने के द्वारा ये अपराधी प्रसिद्ध (या बदनाम) हों।

पाप के लिए निर्धारित किया गया दण्ड (24:13-16)

[13]तब यहोवा ने मूसा से कहा, [14]"तुम लोग उस शाप देने वाले को छावनी से बाहर ले जाओ; और जितनों ने वह निन्दा सुनी हो वे सब अपने अपने हाथ उसके सिर पर टेकें, तब सारी मण्डली के लोग उस पर पथराव करें। [15]और तू इस्राएलियों से कह कि कोई क्यों न हो जो अपने परमेश्वर को शाप दे उसे अपने पाप का भार उठाना पड़ेगा। [16]यहोवा के नाम की निन्दा करनेवाला निश्चय मार डाला जाए; सारी मण्डली के लोग निश्चय उस पर पथराव करें; चाहे देशी हो चाहे परदेशी, यदि कोई उस नाम की निन्दा करे तो वह मार डाला जाए।"

यहोवा ने लोगों के इस प्रश्न की, कि निन्दा करने वाले के विषय क्या किया जाना है, अपने प्रवक्ता मूसा के माध्यम से तुरन्त प्रतिक्रिया दी, और अपना निर्णय बता दिया।

आयतें 13, 14. यहोवा द्वारा निन्दा करने वाले के लिए पथराव द्वारा मृत्यु दण्ड निर्धारित किया गया! पहले दोषी को **छवानी से बाहर** लाना था जिससे वह दूषित न हो (उसकी मृत्यु और अशुद्ध शव के द्वारा)। अंततः, "छावनी" वह स्थान थी जहां परमेश्वर अपने लोगों के मध्य निवास करता था (देखिए गिनती 5:2, 3)।

इसके बाद, जिन लोगों ने अपराधी को निन्दा करते सुना था वे **अपने अपने हाथ उसके सिर पर टेकें**। यह केवल निन्दा करने वाले के दोष को प्रमाणित करने का संकेत रहा होगा, उसकी पहचान सार्वजनिक रूप से दोषी ठहराने के लिए। किन्तु कुछ लेखकों ने इस सांकेतिक क्रिया में अतिरिक्त अर्थ समझें हैं। उदाहरण के लिए, सी. एफ. केइल और एफ. डेलिटश ने लिखा, "निन्दा करने वाले के सिर पर हाथों कम्पनी ... रखने के द्वारा, सुनने वाले या गवाह अपने ऊपर से सुनी गई निन्दा को उतार फेंकते, और उसे निन्दा करने वाले के सिर पर लौटा देते, की वही उसका प्रायश्चित करे।"[12] एरहार्ड इस. गेस्टनबर्गर का भिन्न विचार था, उन्होंने कहा, "दोषी के साथ यह निकट का संपर्क गवाहों को उनके अपने दायित्व, उसके विरुद्ध उनके कथनों के सत्य का स्मरण करवाने के लिए था।" उन्होंने आगे कहा की यदि ये लोग सत्य नहीं बोल रहे थे, "तो यह शाप झूठे गवाहों पर भी वापस आ पड़ेगा।"[13]

अंत में, **सारी मण्डली के लोग** एक साथ एकत्रित होकर **उस पर पथराव करें**। न्याय की इस क्रिया के द्वारा, उनके मध्य से यह बुराई हटाई जाएगी (देखिए व्यव. 17:7)।

आयतें 15, 16. यह संकेत करने के पश्चात की विचाराधीन परिस्थिति के अंतर्गत पापी को क्या दंड दिया जाना है, यहोवा ने इस प्रकार के प्रकरणों पर, जिसका उसने अभी न्याय किया था, अब से लेकर आगे तक लागू रहने के लिए सामान्य नियम दिए।

आयात 15 में कहा गया सामान्य नियम है की जो भी **अपने परमेश्वर को शाप**

दे उसे अपने पाप का भार उठाना पड़ेगा (अर्थात, उसे मृत्युदण्ड दिया जाए)। इसी प्रकार से आयात 16 में पाया जाने वाला सामान्य नियम है कि यहोवा के **नाम** की निन्दा करनेवाला **निश्चय मार डाला जाए**। यह **चाहे देशी** इस्राएली **हो चाहे परदेशी** दोनों पर लागू होता था।

अन्य गलत कार्यों के लिए निर्धारित किया गया दण्ड

(24:17-22)

17"फ़िर जो कोई किसी मनुष्य को प्राण से मारे वह निश्चय मार डाला जाए।
18जो कोई किसी घरेलू पशु को प्राण से मारे वह उसे भर दे, अर्थात प्राणी के बदले
प्राणी दे। 19फ़िर यदि कोई किसी दूसरे को चोट पहुँचाए, तो जैसा उस ने किया हो
वैसा ही उसके साथ भी किया जाए, 20अर्थात अंग-भंग करने के बदले अंग-भंग
किया जाए, आँख के बदले आँख, दाँत के बदले दाँत, जैसी चोट जिस ने किसी को
पहुँचाई हो वैसी ही उसको भी पहुँचाई जाए। 21पशु को मार डालनेवाला उसको
भर दे, परन्तु मनुष्य को मार डालनेवाला मार डाला जाए। 22तुम्हारा नियम एक
ही हो, जैसा देशी के लिये वैसा ही परदेशी के लिये भी हो; मैं तुम्हारा परमेश्वर
यहोवा हूँ।"

क्योंकि निन्दा के लिए निर्धारित दण्ड मृत्यु था, यहोवा ने इसे उपयुक्त समय जाना की स्पष्ट कर दे कि कब मृत्युदण्ड उपयुक्त है और कब नहीं।

आयतें 17-21. परिच्छेद पहले सामान्य नियम बताता है: जो कोई किसी मनुष्य को **प्राण से मारे**[14] वह मृत्युदण्ड के योग्य है और निश्चय मार डाला जाए (24:17)। व्यवस्था के अन्य परिच्छेद यह स्पष्ट करते हैं कि मृत्युदण्ड हत्या के लिए ही था, और यदि कोई किसी के प्राण को बिना किसी पूर्व-निर्धारण अथवा किसी बुरी योजना के बिना ले लेता था, तो इसे नहीं दिया जाना था (उदाहरण के लिए देखिए निर्गमन 21:12-21)।

फ़िर, यह सुनिश्चित करने के लिए कि यह नियम समझ लिया गया और ठीक से लागू किया जाएगा, यहोवा ने दो सीमाएं निर्धारित कीं जो मृत्युदण्ड के लागू करने को सीमित करती थीं। पहली, यदि कोई मनुष्य किसी **पशु** को मारे तो मृत्युदण्ड नहीं दिया जाना था।[15] यदि पशु को मारे तो पशु के स्वामी को पशु का जो भी उचित मूल्य था वह चुकाना था; परंतु उस मनुष्य को मार नहीं डालना था (24:18)। दूसरे, यदि कोई मनुष्य **दूसरे को चोट पहुंचाए** तब भी मृत्युदण्ड नहीं देना था।[16] यदि वह चोट पहुंचाता है तो उसे दण्ड भोगना था - या हर्जाना चुकाना था - उस सीमा तक जितनी उसने दूसरे व्यक्ति को चोट पहुंचाई थी (24:19)। **आंख के बदले आंख** मात्र कहने की विधि थी कि दण्ड (या हर्जाना) अपराध के अनुसार हों (24:20)।

आयतें 17 से 21 तक विपर्यय या परिवर्तन शैली प्रदर्शित करती हैं:

A1: जो कोई किसी मनुष्य को प्राण से मारे वह **निश्चय मार डाला जाए** (24:17)।

B1: जो किसी पशु को मार डाले उसे मृत्यु नहीं देनी थी परन्तु उसे **भर देना था** उचित धनराशि के द्वारा (24:18)।

C: जो किसी मनुष्य को चोट पहुंचाए उसे जितनी चोट और पीड़ा उसने पहुंचाई है उसके अनुपात में दण्ड उठाना था (24:19, 20)।

B2: जो किसी पशु को मारे उसे उसको **भर देना** था (24:21)।

A2: जो किसी मनुष्य को मारे उसे **मार डाला जाए** (24:21)।

यह संरचना बाहरी सीमाओं और केंद्र बिंदु दोनों पर ही बल देते हैं। हत्या मृत्युदण्ड के योग्य अपराध था, परन्तु किसी को चोट पहुंचाना भी दण्ड देने योग्य अपराध था।

"आँख के बदले आँख" वाला नियम *लेक्स टैलिओनिस* कहलाता है, जो लैटिन का पारिभाषिक शब्द है जिसका अर्थ "प्रतिशोध का नियम" होता है।[17] यह निर्गमन 21:23-25 और व्यवस्थाविवरण 19:21 में भी मिलता है। आज की लोकप्रिय संस्कृति में, यह अभिव्यक्ति व्यक्तिगत बदला लेने का पर्याय हो गई है। इससे ऐसा समझा जाता है कि जिसके साथ कुछ गलत हुआ है उसे यह केवल अधिकार ही नहीं, वरन उसका कर्तव्य भी है कि जिस व्यक्ति ने उसके साथ गलत किया है उसके साथ भी वैसा ही करे जैसा उसने किया है। जिसके साथ गलत हुआ है वह व्यक्ति कह सकता है, "तुम ने मुझे मुँह पर मारा, इसलिए मैं भी तुम्हें मुँह पर मारूंगा"; "तुम ने मेरी संपत्ति को हानि पहुंचाई, इसलिए मैं भी तुम्हारी संपत्ति को हानि पहुँचाऊँगा"; "तुमने मेरी पुत्री को मार डाला, इसलिए मैं भी तुम्हारी पुत्री को मारा डालूँगा।" कभी-कभी जिसे चोट लगी है वह उसके साथ जिसने उसे चोट पहुंचाई है, उसके किए से अधिक करना चाहता है: तुमने मेरी बाँह तोड़ी, इसलिए मैं तुम्हारी बाँह, और टांग और गर्दन भी तोड़ डालूँगा![18] इस प्रकार के रवैये से ऐसे विवादों ने जन्म लिया है जो दशकों तक चलते रहे।

क्या "आँख के बदले आँख" वाले सिद्धान्त के इस परिच्छेद की शिक्षा ऐसे रवैये को सही ठहराती है? क्या मूसा की व्यवस्था ने व्यक्तिगत प्रतिशोध का अनुमोदन किया?[19] नहीं किया।

> पुराने नियम में, जैसा कि नए नियम में, बाइबल की शिक्षा है कि बदला लेना परमेश्वर का कार्य है (व्यव. 32:35; 1 शमूएल [25]:32-35; भजन 94:1; नीति. 24:29; रोमियों 12:19)। इसके अतिरिक्त व्यवस्था इसराएलियों को पलटा लेने से मना करती थी (लैव्य. 19:18) और उन्हें सिखाती थी कि अपने शत्रुओं के साथ भलाई करें (निर्गमन 23:4, 5; देखें नीति. 25:21, 22)।[20]

"आँख के बदले आँख" वाले सूत्र का उद्देश्य गलती करने वाले को दण्ड देने के लिए या अपने अपराध की भरपाई करने के लिए दिशा-निर्देश प्रदान करना था। दण्ड को अपराध के अनुरूप होना था; गलती करने वाले द्वारा पीड़ित को हर्जाना

भरना उसके द्वारा की गई गलती के बराबर होना था। इस परिच्छेद में व्यक्तिगत बदला लेना विचाराधीन नहीं था, और न ही मूसा की व्यवस्था में उसकी स्वीकृति थी।

आयत 22. यह नियम इस सिद्धान्त की पुनःआवृत्ति के साथ अन्त होता है कि जिन नियमों का इस्राएलियों (**देशी**) को पालन करना था, उसी का गैर-इस्राएलियों (**परदेशी**) को भी पालन करना था।[21] दोनों में से कोई भी गुट यह दावा नहीं कर सकता था कि परमेश्वर के सम्मुख उनका विशिष्ट स्थान है जो उन्हें दूसरों को बेधड़क होकर मार डालने या चोट पहुँचाने की अनुमति देता है। वही **एक ही नियम** इस्राएलियों और प्रवासी परदेशियों पर लागू होते थे। "एक ही नियम" के लिए इब्रानी शब्द (מִשְׁפָּט *मिशपात)* एक वैधानिक शब्द है जिसका शब्दार्थ है "न्याय" या "निर्णय।" यहोवा ने अपने शब्दों पर बल देते हुए फ़िर से कहा **"मैं तुम्हारा परमेश्वर यहोवा हूँ!"** इसका, कुछ वर्गों के लिए, कुछ सीमा तक तात्पर्य है, "भला होगा कि जो मैंने कहा है तुम उसे सुनों और उसका पालन करो!"

ईश-निन्दा के लिए दण्ड दिया गया (24:23)

[23]अत: मूसा ने इस्राएलियों को यह समझाया; तब उन्होंने उस शाप देनेवाले को छावनी से बाहर ले जाकर उस पर पथराव किया। और इस्राएलियों ने वैसा ही किया जैसा यहोवा ने मूसा को आज्ञा दी थी।

दो परिच्छेद पहले ही ईश-निन्दा करने वाले की कहानी बता चुके हैं। एक में उसके पाप और हवालात में डाले जाने के बारे में है (24:10-12)। दूसरा न्यायी द्वारा दिए गए दण्ड के विषय है: ईशा-निन्दा करने वाला दोषी है और उसे मार डाला जाए (24:13-16)। इस न्यायालय-शैली के नाटक की अंतिम प्रसंग में यहोवा ने बताया कि मृत्युदण्ड को किस प्रकार दिया जाना था।

आयत 23. मूसा ने लोगों तक परमेश्वर के वचन को पहुँचाया, और उन्होंने परमेश्वर द्वारा निर्धारित किए गए दण्ड को कार्यान्वित किया। उन्होंने ईश-निन्दा करने वाले का **छावनी से बाहर ले जाकर उस पर पथराव किया**। परिणामस्वरूप पवित्र-शास्त्र परमेश्वर की आज्ञा मानने के लिए उनको आदर देता है: **और इस्राएलियों ने वैसा ही किया जैसा यहोवा ने मूसा को आज्ञा दी थी।** परमेश्वर के लोगों की प्रशंसा की जानी थी जब वे अपनी आशीषें उसकी इच्छानुसार दूसरों के साथ बांटते थे; उनकी तब भी प्रशंसा की जानी चाहिए थी जब वे उस अनुशासन का पालन करते जिसकी वह माँग करता था।

अध्याय का उचित अन्त होता है, परमेश्वर की पवित्रता को पहचानने और उसका अंगीकार करने के महत्व के स्मरण करवाए जाने के द्वारा। यदि कोई दण्ड पाए बिना परमेश्वर के पवित्र नाम के प्रति अनादर नहीं दिखा सकता था, तो किसी को परमेश्वर द्वारा इस्राएल को मानने के लिए दिए गए पवित्र नियमों और अनुष्ठानों के प्रति भी अनादर नहीं दिखाना था।

अनुप्रयोग

दीवट और रोटी का महत्व (24:1-9)

पवित्र स्थान में दीवट और रोटी के द्वारा परमेश्वर की किस बात को पूरी करने की इच्छा थी?

व्यावाहारिक रीति से, दीपक मिलापवाले तम्बू के भीतरी भाग में ज्योति देते थे। दीवट के बिना, पवित्र स्थान बिलकुल अन्धेरा रहता। इसके अतिरिक्त, दीवट का संभवतः आत्मिक महत्व भी था। हो सकता है कि वह इस्राएल के "जातियों के लिए प्रकाश" (यशा. 42:6) होने के दायित्व का प्रतीक था। हो सकता है कि उसका उद्देश्य परमेश्वर के वचन का प्रतिनिधित्व करना था, जिसके लिए, भजनकार ने कहा कि वह "[मेरे] पाँव के लिए दीपक और [मेरे] मार्ग के लिए उजियाला है" (भजन 119:105)। किन्तु यह सबसे अधिक संभावित हो सकता है कि ज्योति स्वयं परमेश्वर की अपने लोगों इस्राएल के मध्य में उपस्थित होने का प्रतिनिधित्व करती है। वही था जिसने आरंभ में कहा था "उजियाला हो" (उत्पत्ति 1:3)। वही है जो पूर्णतः पवित्र और ज्योति से परिपूर्ण है, जिसमें कुछ भी अन्धकार नहीं है।

पवित्र स्थान में मेज़ पर रखी रोटी याजकों के लिए भोजन उपलब्ध करवाती थीं, परन्तु उनका उद्देश्य किसी अन्य प्रतीकात्मक उद्देश्य की पूर्ति भी हो सकता है। संभवतः, बारह रोटियाँ, बारह गोत्रों का प्रतिनिधित्व करती थीं, और पवित्र स्थान में उनकी उपस्थिति, इस तथ्य के लिए थी कि इस्राएल सदा परमेश्वर की उपस्थिति में बना रहता है। यह जानकारी रखना कि वे सदा उसकी उपस्थिति में रहते थे, परमेश्वर के लोगों के लिए शांतिदायक था, परन्तु इसका यह भी अभिप्राय था कि उन्हें सदा उसकी इच्छा को पूरा करना था। वह वहीं था - वह दूर नहीं था - और यदि वे उसके अनाज्ञाकारी होते तो वह जान जाता।

पुराने नियम की व्यवस्था का उद्देश्य नई वाचा का पूर्वाभास देना था (इब्रानियों 10:1)। इस नई वाचा के युग में, मिलापवाले तम्बू में से ज्योति और रोटी किसका प्रतीक हैं?

ज्योति परमेश्वर के वचन के लिए हो सकती है, जो मसीहियों के लिए मार्ग को उजियाला करती रहती है। संभवतः एक अधिक अच्छा अनुप्रयोग होगा ज्योति का प्रभु यीशु मसीह होना देखना, जो परमेश्वर पिता का प्रतिरूप है और जिसने "जगत की ज्योति" (यूहन्ना 8:12) होने का दावा किया। ज्योति के रूप में, वह मानवजाति को ज्योतिर्मय करता है और उन्हें अनन्त जीवन का मार्ग दिखाता है।

रोटी एक से अधिक बातों का प्रतीक हो सकती है। यह निश्चय ही मसीहियों को स्मरण दिलाती है कि यीशु ने कहा कि वह "जीवन की रोटी है" (यूहन्ना 6:35), जिसे, यदि कोई खाए, तो वह उसे जीवन देगी। इसके अतिरिक्त क्योंकि रोटी प्रतिसप्ताह बदली जाती थी और याजकों द्वारा खाई जाती थी, यह प्रभु भोज को स्मरण करवाती है, जिसे मसीही, यहोवा के राज्य के याजक, प्रतिसप्ताह प्रभु के दिन में खाते हैं।[22]

मनुष्यों और पशुओं के मध्य अन्तर (24:17, 18, 21)

लैव्यव्यवस्था 24 में यहोवा ने मनुष्यों और पशुओं के मध्य अन्तर पर बल दिया। मनुष्य की हत्या करने का परिणाम था "मृत्यु"! पशु को मारने का दण्ड था कि "उसकी भरपाई कर दी जाए" (24:17, 18, 21)। दूसरे शब्दों में, उसे पशु के स्वामी को उस पशु की कीमत के तुल्य चुकाना था। पशु को मारने के लिए किसी को मार नहीं डाला जाना चाहिए था।

यह भिन्नता सारी बाइबल में देखने को मिलती है। जब परमेश्वर ने मनुष्य को बनाया, तो उसे अपने ही स्वरूप में बनाया और उसे सभी प्राणियों पर अधिकार (उत्पत्ति 1:27, 28) दे दिया। मनुष्य और पशुओं में प्राथमिक भिन्नता है कि मनुष्य के पास एक आत्मा है और वह अनन्तकाल तक जीवित रहेगा; यही बात पशुओं के लिए नहीं कही गई है। सामान्यतः, मनुष्यों के नियमों ने उसी भिन्नता को, जिसे परमेश्वर ने मनुष्यों तथा अन्य पशुओं के बीच किया, प्रतिबिंबित किया है। पशुओं के विरुद्ध निर्दयता से व्यवहार करने को वर्जित करने वाले नियम तो हैं, परन्तु (इस लेखक की जानकारी में), ऐसा कोई नहीं है जो पशु को मारने के लिए मृत्यु दण्ड की आज्ञा देता है।

फ़िर भी इस भिन्नता पर आज बल देने की आवश्यकता हो सकती है। एक ओर तो प्रायः मनुष्यों का अवमूल्यन किया जाता है। बहुतेरे यह मानते हैं कि मानव जाति आज जहाँ है वहाँ क्रमिक विकास की प्रक्रिया के द्वारा पहुँची है, और हम आज महिमान्वित वनमानुषों से अधिक नहीं हैं। इसके अतिरिक्त, अनजन्मे बच्चों, विकलांग व्यक्तियों, और वृद्धों के जीवन, प्रायः मूल्यहीन समझे जाते हैं, परिणामस्वरूप, कुछ यह सोचते हैं कि ऐसे व्यक्तियों को मार डाला जा सकता है और ऐसा कर भी देना चाहिए।

दूसरी ओर, प्रायः पशुओं को अधिक मूल्य दिया जाता है। लोग बहुधा अपने पालतू जानवरों से, अन्य व्यक्तियों की अपेक्षा, अधिक अच्छा (और अपने परिवार के लोगों से भी अधिक अच्छा) व्यवहार करते हैं। वे कुत्तों या बिल्लियों के भोजन के लिए तथा जानवरों के चिकित्सकों की सेवाओं के लिए बहुत पैसा व्यय करते हैं। यदि कोई किसी मनुष्य को मार डाले, तो संभव है कि उसे जेल से इस चेतावनी के साथ कि फ़िर ऐसा नहीं करना, जल्दी छोड़ दिया जाए। इसकी तुलना में, यदि कोई पशुओं के साथ निर्दयी व्यवहार का दोषी है, तो उसे जेल जाना पड़ेगा और किसी की हत्या करने वाले के दण्ड से अधिक समय जेल में बिताना पड़ेगा।

कहने का तात्पर्य क्या है? यह नहीं कि हमें पशुओं के साथ दुर्व्यवहार करना चाहिए या पालतू जानवर रखना गलत है। वरन यह कि हमें बाइबल में मिलनी वाली भिन्नता का ध्यान रखना चाहिए: मनुष्य पशुओं से कहीं अधिक मूल्यवान हैं! अर्थ यह नहीं कि हमें पशुओं से कम प्रेम रखना चाहिए, परन्तु यह कि हमें अपने संगी मनुष्यों से अधिक प्रेम करना चाहिए।

“आँख के बदले आँख”: प्रतिशोध की बात (24:20)

आज 24:20 में कहा गया “आँख के बदले आँख” वाला सिद्धान्त कैसे लागू किया जा सकता है? इसे व्यक्तिगत प्रतिशोध को उचित ठहराने वाला नहीं समझना चाहिए। बाइबल सिखाती है कि परमेश्वर के लोगों को पलटा लेने की भावना रखने वाला नहीं होना चाहिए (रोमियों 12:19)। “हिसाब बराबर” करने की भावना स्वाभाविक प्रतिक्रिया जैसी तो लगती है। परन्तु मसीहियों को परमेश्वर की इच्छा को पूरा करना चाहिए; इसका अर्थ है कि पलटा लेने की सांसारिक भावनाओं की संतुष्टि का परित्याग कर, एक “अस्वाभाविक” शैली अनुसार जीवन व्यतीत करना। मसीहियों को “इस सँसार के सदृश नहीं होना” है (रोमियों 12:1, 2)। दोनों, पुराना नियम (लैव्य. 19:18) और नया नियम (रोमियों 12:19; इब्रा. 10:30) की शिक्षा है कि मनुष्यों द्वारा बदला लेना गलत है।

वाक्याँश “आँख के बदले आँख” किसी गलती के लिए अधिक से अधिक दिए जाने वाले दण्ड को निर्धारित करता था; उसका उद्देश्य प्रतिशोद्ध को उचित ठहराना कदापि नहीं था। यदि इसका वास्तविक पालन होता, तो “आँख के बदले आँख” वाला न्याय कभी समाप्त न होने वाले पीड़ादायक क्रियाओं के चक्र में डाल देगा। किसी ने कहा है कि ऐसा समाज जिसमें व्यक्ति “आँख के बदले आँख, दाँत के बदले दाँत” वाले सिद्धान्त के अनुसार रहते हों, वह अंधों और बिना दाँतों के लोगों का समाज होगा।

किसी भी व्यक्ति के लिए बदला लेना अच्छा नहीं है, परन्तु इसका विपरीत - गलती करने वाले को क्षमा करना - स्वास्थ्यवर्धक है, शारीरिक तथा आत्मिक रीति से। चोट, दुर्भावना, और द्वेष कैंसर के समान हो सकते हैं जो व्यक्ति को भीतर ही से खा जाता है। ऐसी भावनाएं व्यक्ति के विश्राम, धैर्य, और मन की शान्ति को चुरा लेती हैं, और तनाव तथा अशान्ति को बढ़ाती हैं, जिससे शारीरिक रोग और शीघ्र मृत्यु भी हो सकती है। इसकी तुलना में, जिन्होंने हमारे प्रति गलत किया है उन्हें क्षमा करना[23] - चाहे वे पश्चाताप करें या न करें, या क्षमा के योग्य हों अथवा न हों - शान्ति लाएगा।

यद्यपि “आँख के बदले आँख” वाले सिद्धान्त को प्रतिशोध लेने को उचित ठहराने के लिए प्रयोग नहीं करना चाहिए, किन्तु प्रशासन के द्वारा न्याय के प्रबन्धन के लिए यह अच्छा मार्गदर्शक है। सामाजिक दण्ड को अपराध के अनुपात में होना चाहिए।

पुराना नियम जघन्य अपराधों जैसे कि हत्या के लिए मृत्यु दण्ड निर्धारित करता है। नया नियम कहता है कि “शासकीय अधिकार परमेश्वर की ओर से हैं” और परमेश्वर द्वारा बुराई को दण्डित करने के लिए ठहराए गए हैं। अधिकारी “तलवार व्यर्थ लिए हुए नहीं हैं”; वह तलवार “परमेश्वर का सेवक है, कि उसके क्रोध के अनुसार बुरे काम करने वाले को दण्ड दे” (रोमियों 13:1-4)। लोगों को मसीहियों के व्यक्तिगत दायित्वों और न्याय के सार्वजनिक प्रबन्धन को लेकर बाइबल की शिक्षाओं में परस्पर गड़बड़ाना नहीं चाहिए। अन्ततः परमेश्वर स्वयँ

ही क्षमा नहीं पाए हुए पापियों का न्याय अनन्त नर्क में करेगा।

समाप्ति नोट्स

[1]मिलापवाले तम्बू के पवित्र - स्थान में सामग्री के तीन मद थे: दीवट, मेज़ और धूप की वेदी। महापवित्र - स्थान में केवल एक ही सामग्री थी, वाचा का सन्दूक, और उसके ऊपर प्रायश्चित का ढक्कन। लैव्यव्यवस्था में धूप की वेदी, वाचा का सन्दूक, और प्रायश्चित के ढक्कन के बारे में पहले ही कुछ कहा जा चुका है; परन्तु दीवट अथवा मेज़ के विषय में कुछ नहीं कहा गया है। [2]आर. के. हैरिसन ने कहा कि ईश-निन्दा का यह प्रकरण "संभवतः मूसा को पवित्र तेल और भेंट वाली रोटियों के विषय दिए गए निर्देशों के कुछ ही समय बाद हुआ" (आर. के. हैरिसन, *लैव्यव्यवस्था*, द टिन्डेल ओल्ड टेस्टामेंट कॉमेन्ट्रीस [डाउनर्स ग्रोव, इल्लिनोय: इन्टर-वर्सिटी प्रैस, 1980], 220)। [3]निर्गमन 25:23-30 में वह मेज़ बनाने के निर्देश दिए गए हैं जिसपर "भेंट वाली रोटियों" को रखना था। यह पारिभाषिक शब्द निर्गमन 35:13; 39:36; और गिनती 4:7 में प्रयुक्त हुआ है। [4]गौर्डन जे. वैन्हैम ने कहा रोटियाँ इतनी बड़ी होती थीं और मेज़ इतनी छोटी कि रोटियों को दो ढेर में रखा जाता होगा न कि दो पंक्तियों में, जैसा कि अधिकांश अंग्रजी अनुवादों में सुझाया गया है। (गौर्डन जे. वैन्हैम, *द बुक ऑफ लैव्यव्यवस्था*, द न्यू इंटरनैशनल कॉमेन्ट्री ऑन द ओल्ड टेस्टामेंट [ग्रैंड रैपिड्स, मिशिगन: विलियम बी. एर्डमैंस पब्लिशिंग कम्पनी, 1979], 310; देखिए जोसेफस *एंटीक्विटीज़* 3.6.6.) [5]जॉर्ज ए. एफ. नाईट का विचार था कि गलती करने वाले ने परमेश्वर के नाम की निन्दा यह संदेह व्यक्त करके की थी कि क्या परमेश्वर किसी विशेष रीति से इस्राएल के साथ था भी और "ऐसा संकेत करने के द्वारा कि वाचा का विचार ढेर सारा बकवाद था" और सृष्टिकर्ता परमेश्वर ने, उनके साथ निवास करने के लिए, इस्राएल को नहीं चुना होगा। (जॉर्ज ए. एफ. नाईट, *लैव्यव्यवस्था*, द डेली स्टडी बाइबल [फिलेडेल्फिया: वेस्टमिनिस्टर प्रैस, 1981], 148.) [6]टिमथी एम. विल्लिस, *लैव्यव्यवस्था*, एबिंगडन ओल्ड टेस्टामेंट कॉमेन्ट्रीस (नैशविल्ले: एबिंगडन प्रैस, 2009), 205. औरों का विचार है कि 24:11 में "निन्दा" के लिए आया हुआ शब्द קָבַב (*काबाब*) से आया है, जिसका सदा ही नकारात्मक अभिप्राय होता है (गिनती 22:11, 17; 23:8, 11, 13, 25, 27; 24:10; अय्यूब 3:8; 5:3; नीति. 11:26; 24:24). [7]देखिए लुडविग कोहलर एण्ड वॉल्टर बौम्गार्टनर, *द हीब्र्यू एण्ड ऐरेमिक लिक्सिकौन ऑफ द ओल्ड टेस्टामेन्ट*, स्टडी एड., ट्रान्स एण्ड एड. एम. ई. जे. रिचर्डसन (बॉस्टन: ब्रिल, 2001), 2:1104. [8]वैनहैम ने कहा, "यह प्रकरण चित्रित करता है कि किस प्रकार से परिस्थितियों से संबंधित अनेकों नियमों का पेंटाट्युक में आरम्भ हुआ होगा। वे विशिष्ट परिस्थितियों से निकलकर आए जिन्हें न्याय के लिए न्यायालय में लाया गया। किसी विशिष्ट घटना के लिए दिए गए दण्ड को दर्ज कर लिया गया जिससे, यदि वैसी ही कोई घटना दोबारा हो जाए, तो भविष्य में न्यायियों के लिए मार्गदर्शन रहे। यह यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि वह न्यायी जिसका निर्णय दर्ज किया गया, मूसा नहीं परमेश्वर था (वैनहैम, 310-11). [9]दो अन्य प्रकरणों के लिए, जिनमें मूसा को विशिष्ट परिस्थितियों के लिए परमेश्वर के न्याय का पता करना पड़ा, देखिए गिनती 9:6-14; 27:1-11. [10]पुराने नियम के अन्य उदाहरण भी इसी उद्देश्य की पूर्ति करते प्रतीत होते हैं (उत्पत्ति 6:1, 2; गिनती 25:1-9; 1 राजा. 11:1-13)। वास्तव में, व्यवस्था विशेष रूप से अविश्वासियों के साथ अन्तर्जातीय विवाह करने से मना करता है (निर्गमन 34:15, 16; व्यव. 7:3, 4; see Ezra 9; 10; Neh. 9; 10; 13)।

[11]शलोमीत और दिब्री अन्य कारणों से भी विख्यात हो सकते हैं, इसी लिए उनके नाम यहाँ इस्राएलियों की निर्जन प्रदेश की यात्रा के ऐतिहासिक लेख में दर्ज किए गए। इससे भी कम संभावना इस बात की है कि यह प्रकरण दान के गोत्र की सामान्यतः अविश्वास्योगयता का उदाहरण है। मेरी डगलस ने, जिनका मानना है कि कथा में नामों के अर्थ बल देते हैं कि क्रियाओं की प्रतिक्रियाएं होती हैं, एक अन्य संभावना का सुझाव दिया: "एक बार एक पुरुष था (जिसका कोई नाम नहीं है), जो

शलोमीत-प्रतिफल या दण्ड का पुत्र, और दिब्री-अभियोग का नाती, जो दान-न्याय के घराने से था, और उसने उस नाम के विरुद्ध अपमानजनक बातें मारीं ... और यहोवा ने कहा 'उसे मृत्युदण्ड दिया जाए, उसने मेरे नाम को मारा, उसे मृत्यु होने तक मारा जाए'" (मेरी डगलस, *लेविटिकस एज लिट्रेचर*[ऑक्सफर्ड: ऑक्सफर्ड यूनीवर्सिटी प्रैस, 1999], 207). [12]सी. एफ. केइल और एफ. डेलिटश, *द पेंटाट्युक*, वोल. 2, ट्रान्स. जेम्स मार्टिन, बिबलिकाल कॉमेंट्री ऑन द ओल्ड टेस्टामेंट (ग्रैंड रैपिड्स, मिशिगन: विलियम बी. एर्डमैंस पब्लिशिंग कम्पनी, 1959), 454. [13]एरहार्ड इस. गेस्टनबर्गर, *लैव्यव्यवस्था: ए कॉमेंट्री*, ट्रान्स. डगलस डब्ल्यू. स्टॉट, द ओल्ड टेस्टामेंट लाइब्रेरी (लूईविल: वेस्टमिनिस्टर जॉन नॉक्स प्रैस, 1996), 363-64. [14]यहां प्रयुक्त इब्रानी शब्द, נָכָה *(नकह)*, का शब्दार्थ है "मारना।" [15]जैसे की पिछली आयात में, 24:18 में जो इब्रानी शब्द "मार डाले" के लिए प्रयुक्त हुआ है उसका शब्दार्थ है "मारना।" [16]आयात 24:19 में किसी व्यक्ति को "चोट" पहुंचाने का शब्दार्थ है "उस पर निशान छोड़ना।" [17]रिचर्ड एं. सौलेन, *हैंड बुक ऑफ बिबलिकल क्रिटिसिज़म*, 2न्ड एड. (एटलांटा: जौन नौक्स प्रैस, 1981), 111. [18]कुछ का लेमेक जैसा रवैया हो सकता है, जिसने कहा, "मैंने एक पुरूष को जो मुझे चोट लगाता था, अर्थात एक जवान को जो मुझे घायल करता था, घात किया है। जब कैन का बदला सातगुणा लिया जाएगा। तो लेमेक का सत्तर गुणा लिया जाएगा।" (उत्पत्ति 4:23, 24; NRSV)। [19]यदि मूसा की व्यवस्था यह सिखाती भी, कि व्यक्तिगत बदला लेना स्वीकार योग्य है, तो भी मसीही व्यवस्था के आधीन नहीं हैं। यीशु ने स्वयं सिखाया कि इस परिच्छेद का हवाला दे करके कोई व्यक्तिगत बदला लेने को उपयुक्त नहीं ठहरा सकता है (मत्ती 5:38-48)। [20]कोय डी. रोपर, *निर्गमन*, ट्रुथ फ़ॉर टुडे कमेन्ट्री (सर्ची, आर्क.: रिसोर्स पब्लिकेशन्स, 2008), 356. वाक्याँश "आँख के बदले आँख" पर चर्चा रोपर, 354-57 में मिलती है।

[21]इस नियम का गैर-इस्राएलियों पर भी लागू होना उस प्रश्न का एक और उत्तर हो सकता है कि इस वृतान्त को लैव्यव्यवस्था में क्यों सम्मिलित किया गया है। क्योंकि ईश-निन्दा करने वाले का पिता मिस्री था, इसलिए उसका परिणाम प्रदर्शित करता है कि व्यवस्था उन पर भी लागू थी जो इस्राएली नहीं थे, और उन पर भी जो थे। [22]जेम्स बर्टन कॉफ़मैन ने लिखा, "इस भेंट वाली रोटी के प्रतिसप्ताह बदले जाने के विशिष्ट व्यवहार का ... सीधा संकेत मसीह के संतों का प्रतिसप्ताह प्रभु की मेज़ से प्रभु भोज में सम्मिलित होने की ओर है" (जेम्स बर्टन कॉफ़मैन, *कॉमेन्ट्री ऑन लैव्यव्यवस्था एण्ड गिनती* [एबीलीन, टेक्सस: ए.सी.यू. प्रैस, 1987], 220)। [23]क्षमा की अनिवार्यता को दिखाने वाले खण्डों में सम्मिलित हैं: मत्ती 6:12-15; लूका 23:34; प्रेरितों 7:60; इफिसियों 4:32; कुलुस्सियों 3:13.